Year-8; Sept. 2017
ISSN–2231-1130
UGC Sr. No. – 48398
VEETHIKA

कबीरदास की सामाजिक क्रान्तिकारिता

डॉ. संगीता लाल*

कबीरदास जी मध्यकाल की सामाजिक संस्कृति के प्रतीक हैं। वस्तुतः वे जन्म से विद्रोही, प्रकृति से समाज सुधारक एवं हृदय से लोककल्याण के आकांक्षी महामानव थे। उनके व्यक्तित्व का पूरा प्रतिबिम्ब उनके साहित्य में विद्यमान है। कबीर में अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति का खरापन विद्यमान था। वे अनुभूतिजन्य सत्य पर विश्वास करते थे। उनकी कविता प्रयत्न साध्य नहीं है। उनकी अभिव्यंजन शैली अत्यन्त सशक्त एवं प्रभावशाली है। अभिव्यंजना के अनेक कलात्मक तत्व उनकी कविता में सहज भाव से आये। उन्होंने कलापक्ष को अनुभूति पक्ष पर हावी नहीं होने दिया। कविता करना कबीर का उद्देश्य नहीं था। कबीर अपनी मूल प्रकृति में समाज सुधारक थे। समाज सुधार करने के लिये उनका माध्यम बनती है कविता। कबीरदास जी ने अपने समय में मौजूद लगभग हर एक बुराई पर कुछ न कुछ कहा है।

कबीरदास ने **'दुई जगदीश कहां से आया। कहु कौन भरमाया।'** कहकर राम रहीम की एकता का प्रतिपादन किया। **'बकरी पाती खात है, ताकी काली खाल'** और **'दिन में रोजा रहत हैं, राति हनत हैं गाय'** कहकर कबीरदास जी हिंसा का विरोध करते हैं। कबीरदास जी **'जो तू बाभन बभनी जाया'** कहकर जाति प्रथा का खंडन करते हैं। उन्होंने **'दुनिया ऐसी बावरी पाथर पूजन जाए'** कहकर मूर्ति पूजा का खंडन किया। **'देव पूजि हिंदू मुए, तुरुक मुए हज जाए। जटा बांधि जोगी मुए, राम किन्हूं न पाई।'**, कहकर**'कांकर पाथर जोरि के'** मंदिर और मस्जिद बनाने वालों की खबर ली। वस्तुतः कबीर सभी तरह के आडम्बरों और कर्मकांडों के विरूद्ध थे। वे उन सारी बातों को 'सुरझावनहारी' बनाना चाहते थे जिसे लोगों ने 'अरूझाकर' रखा था। कबीर के आंखों से **'भ्रम की टाटी'** कब की उड चुकी थी। कबीर में आत्मसाक्षात्कार घटित हो चुका था, **'मोको कहां ढूंढ़ै रे बन्दे, मैं तो तेरे पास'**। लेकिन कबीर जब भी सच बोलते हैं तो लोग कबीर की सुनते नहीं हैं और मारने दौड़ पड़ते हैं –**'सांच कहै तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना**।' कबीर **'ढाई आखर प्रेम'** को महत्व देने वाले, माया को 'महाठगिनी' कहने वाले और ज्ञान रुपी आंख से समाज को देखने वाले महामानव थे। कबीर के साथ चलने की एकमात्र शर्तथी कि आपका दिल ओर दिमाग बिल्कुल दुरूस्त हो। 'प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल' जी लिखते हैं, ''उनकी खोज संवादधर्मी मनुष्यों की थी, जिनसे वह कुछ कह सकें, कुछ सुन सकें। उनके श्रोता समुदाय में शामिल होने की शर्त यह नहीं थी कि आपने जन्म सही खानदान या जाति में लिया हो, बल्कि यह थी कि आपका दिलो–दिमाग दुरुस्त हो। यह नहीं थी कि आप कबीर को धर्मगुरु मानकर उनकी ही मूर्ति की पूजा करने लगें बल्कि यह थी कि आप भी खोज में शामिल होने को, उसके जोखिम उठाने को, कबीर की लुकाठी से अपना 'घर' जलवाने को तैयार हों।''[1]

कबीर की कविता हमारे मन को छूती है। पाठक तक कबीर की चिंताएं पहुंच जाती हैं। इनकी वाणी में ओज था, पांडित्य का बोझ नहीं था। इस युग के संतों के स्वर ने 'मार्क्स के अफीम' का कार्य न करके आम जनता में साहस का संचार करने का काम किया। जिस साम्प्रदायिकता की बात आज हम करते हैं; उसे कबीर ने बहुत पहले ही देख लिया था। कबीर ने **'हिन्दुअन की हिंदूआई'** और **'तुरकन की तुरकाई'** को पहचान लिया था। कबीर केवल विचारक नहीं थे बल्कि गहन रुप से समाजिक चिंतन करने वाले व्यक्ति थे। 'डॉ. राजदेव सिंह' ने लिखा है, 'अनुभव के स्तर पर जो शोक था। अभिव्यक्ति के स्तर पर वह श्लोक बन गया।' कबीर शोषक–शोषित का भेद मिटाकर साम्य स्थापित करना चाहते थे। कबीर जीवन पर्यन्त लोगों को यही समझाते रहे कि जन्म से सभी मनुष्य बराबर हैं। बलदेव वंशी लिखते हैं, ''भारतीय समाज में जाति व्यवस्था के साथ ही सामंतवादी व्यवस्था के विरूद्ध तो कबीर विद्रोही थे ही इसके अतिरिक्त रुढियों–पाखंडों, आडंबरों–मिथ्याचारों के भी

* लखनऊ

विध्वंसक थे।...ऐसे में संतों में संत कबीर अपनी अद्वितीयता के साथ हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। उनकी वाणी परंपरागत सभी बनी–बनाई विभाजक हदों को मिटाती है तो मानवीय संवेदना के मूल उत्स से हमें जोडकर अखुट संवेदना से भर देती है, पूरे परिवेश के प्रति संवेदित करती है, मनुष्य होने की तमीज पैदा करती है। हमें हमारा मूल स्वरूप याद दिलाती है।''[2]

कबीर ने निर्गुण ब्रह्म के मामले में भी अपनी एक निराली राह निकाली। उन्होंने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के कण–कण में जो एक मूल तत्व एक रस होकर व्याप्त है, उसे ब्रह्म कहा। यही ब्रह्म सर्वगुण सम्पन्न, ज्योति स्वरूप, सच्चिदानंद, विलक्षण तथा सम्पूर्ण चराचर का नियंता है। कबीर निगुर्ण ब्रह्म को कोई नाम नहीं देना चाहते लेकिन यदि नाम देना ही पड़े तो उसे वह राम कहते हैं। कबीर के राम दशरथ सुत राम से बिल्कुल अलग हैं। राम नाम की जनसामान्य में लोकप्रियता के कारण कबीर ब्रह्म के लिये राम शब्द का चयन करते हैं। कबीर ने उन लोगों को भी कोसा जो ईश्वर को मंदिरों और मस्जिदों में कैद कर लेना चाहते हैं। यदि ईश्वर असीम है तो वह चाहरदीवारी में कैसे समा सकता है। कबीर ने कहा कि जो ब्रह्म जन्म या अवतार लेता है; वह उनका ब्रह्म नहीं है। कबीर स्पष्ट रूप से अपने ब्रह्म का स्वरूप नहीं बताते हैं क्योंकि कबीर की आंखों ने उस ब्रह्म को कभी देखा ही नहीं है –

'भारी कहौं त बहु डरैं, हल्का कहूं तौ झूठ।
मैं का जाणौं राम कूं, नैनूं कबहुं न दीठ।'

निगुर्ण ब्रह्म का संबंध प्रगतिशील चेतना और निम्न कही जाने वाली जातियों से है। कबीर यहां पर भी परम्परा द्वारा दिये गये समाधान को स्वीकार नहीं करते हैं। 'डॉ. ताराचंद' 'भारतीय संस्कृति पर इस्लामी प्रभाव' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि ''कबीर पहला व्यक्ति है जिसने एक केन्द्रिय धर्म, एक मध्य मार्ग का निस्संकोच आगे आकर ऐलान किया। उसका नारा पूरे हिंदुस्तान में गूंज उठा और सैकडों जगहों से उसकी प्रतिध्वनि सुनी गई।...कबीर के धर्मानुयायियों की संख्या उतना महत्व नहीं रखती जितना कि कबीर का वह असर जो पंजाब, गुजरात और बंगाल तक फैल गया और मुगल काल में बढ़ता गया।''[3]

मलयज ने कहा है, 'कविता कुछ भी सिद्व नहीं करती सिवाए एक अनुभव रचने के'। कबीर की कविता टटकी अनुभूतियों की कविता है। इसमें प्रमाणिक जीवन धड़कता है। कबीर अपनी बातें बिना किसी लाग लपेट के सीधे–सीधे कहते हैं जिसके कारण इनको अख्खड और फक्कड़ माना जाता है। 'डॉ. सरनाम सिंह शर्मा' लिखते हैं, ''कितने ही लोग कबीर को अख्खड़ कहते हैं। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। उनमें से दो प्रमुख कारण दिखाई पड़ते हैं– एक तो यह कि कबीर स्पष्टवादी हैं इसलिए वह कोई लगी–लिपटी बात नहीं करते हैं। उनकी स्पष्टवादिता उनकी वाणी को मुक्त कर देती है। वे जो बात कहते हैं वह सत्य पर आधृत, तीर सी सीधी, किंतु वैसी ही तीक्ष्ण भी हो सकती है। जो बात वह किसी सामान्य दुराचारों को कह सकते हैं; वही बात किसी दुराचारी पंडित या राजा को भी कह सकते हैं और वही तीखी बात वह किसी मुल्ला और किसी काजी को भी सुना सकते हैं।''

कबीरदास जी समाजिक क्रान्तिकारी थे। इनकी क्रान्तिकारिता और स्पष्ट चिंतन के कारण ही अपने समय में ही सम्मान के उच्च आसन पर आसीन हो गये थे। न केवल सामान्य जनता द्वारा वरन समकालीन संतों द्वारा भी कबीर को सराहा गया। 'पलटू साहब' ने कबीर के गुण गाये। संत रैदास ने कबीर को बडा भाई कहा। पीपा जी जो गागरोन के राजा थे उन्होंने कबीर कबीर के बारे में कहा – ''यदि कलिकाल में कबीर न होते तो कलियुग और वेद मिलकर भक्ति को रसातल पहुंचा देते...मैंने तो कबीर की शरण ही में कुछ प्राप्त किया।

''जो कलि मांझ कबीर न होते। तौ ले...वेद अरु कलियुग मिल करि।
भगति रसातल देते...नाम कबीर सांच परकाशा तहं पीपे कछु पाया।''[5]

इस तरह से हम कह सकते हैं कि कबीर सामाजिक क्रान्तिकारी और युग द्रष्टा थे। हिंदी

साहित्य में कबीर जैसा जुझारू और खरी वाणी बोलने वाला कवि मिलना दुर्लभ है।

सन्दर्भ –

1. अग्रवाल, पुरुषोत्तम, 2010, अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ– 407
2. वंशी, बलदेव, 2010, सात भारतीय संत, नई दिल्ली, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, पृष्ठ– 39
3. जाफरी, अली सरदार, 1999, कबीर बानी, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ– 27
4. शर्मा, सरनाम सिंह, 2011, कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व और सिद्धान्त, नई दिल्ली, कल्पना प्रकाशन, पृष्ठ– 327
5. दास, अभिलाष,(नवम् संस्करण 1993) कबीर दर्शन, इलाहाबाद, प्रकाशक– कबीर पारख संस्थान, प्रीतम नगर, पृष्ठ– 10